CHETANA
INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION (CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

पंचायती राज में महिला सरपंचों की सहभागिता

डॉ. नीतू
राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर
E-mail - neeturepswall@gmail.com, Mob.-9529542900

First draft received: 17.03.2024, Reviewed: 25.03.2024, Final proof received: 27.03.2024, Accepted: 31.03.2024

सार-संक्षेप

भारतवर्ष में प्राचीन काल से गणतन्त्र विद्यमान थे।[1] ब्रिटिश शासनकाल में पंचायतें तथा स्थानीय संस्थाएँ धीरे–धीरे शक्तिहीन होती चली गईं। स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में स्थानीय स्वशासन की प्रारम्भिक इकाई के रूप में पंचायतों की व्यवस्था की गई। जनसहभागिता बढ़ाने हेतु 1952 में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना प्रारम्भ की गई। यह योजना अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकी।[2] पंचायतीराज संस्थाओं को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा विकास कार्यों में जनसहभागिता बढ़ाने के लिए 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति द्वारा पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था का सुझाव दिया गया, जिसे अधिकांश राज्यों द्वारा लागू किया गया।[3] सन् 1978 में पंचायती राज प्रणाली की समीक्षा के लिए गठित अशोक मेहता समिति द्वारा पंचायतों के द्विस्तरीय ढाँचे तथा पंचायतों में राजनीतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया गया।[4] 1985 में योजना आयोग द्वारा नियुक्त जी.बी.के. राव समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देने तथा उन्हें सक्रिय करने की अनुशंसा की।[5] सन् 1986 में डॉ0 लक्ष्मीमल सिंघवी की अध्यक्षता में बनाई गई समिति ने पंचायतों तथा उनके चुनाव के लिए संवैधानिक प्रावधानों की महत्वपूर्ण अनुशंसा की।

मुख्य शब्द *: ब्रिटिश शासनकाल, स्थानीय स्वशासन, पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था **आदि.***

प्रस्तावना

स्थानीय शासन की व्यवस्था के बिना कोई भी लोकतन्त्र वास्तविक नहीं कहा जा सकता। इसलिए लोकतन्त्र में स्थानीय स्वशासन की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। प्रभावकारी और सक्षम स्थानीय शासन सार्वभौम रूप से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आधुनिकीकरण के अंग के रूप में विश्व के विकासशील देशों की माँग है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से गणतन्त्र विद्यमान थे।[1] ब्रिटिश शासनकाल में पंचायतें तथा स्थानीय संस्थाएँ धीरे–धीरे शक्तिहीन होती चली गईं। स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में स्थानीय स्वशासन की प्रारम्भिक इकाई के रूप में पंचायतों की व्यवस्था की गई। जनसहभागिता बढ़ाने हेतु 1952 में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना प्रारम्भ की गई। यह योजना अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकी।[2] पंचायतीराज संस्थाओं को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा विकास कार्यों में जनसहभागिता बढ़ाने के लिए 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति द्वारा पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था का सुझाव दिया गया, जिसे अधिकांश राज्यों द्वारा लागू किया गया।[3] सन् 1978 में पंचायती राज प्रणाली की समीक्षा के लिए गठित अशोक मेहता समिति द्वारा पंचायतों के द्विस्तरीय ढाँचे तथा पंचायतों में राजनीतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया गया।[4] 1985 में योजना आयोग द्वारा नियुक्त जी.बी.के. राव समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देने तथा उन्हें सक्रिय करने की अनुशंसा की।[5] सन् 1986 में डॉ0 लक्ष्मीमल सिंघवी की अध्यक्षता में बनाई गई समिति ने पंचायतों तथा उनके चुनाव के लिए संवैधानिक प्रावधानों की महत्वपूर्ण अनुशंसा की।[6]

सन् 1991 में पंचायती राज संस्थाओं को अधिक सक्रिय करने के लिए 73वाँ संविधान संशोधन संसद द्वारा पारित किया गया। इसके द्वारा पंचायती राज व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ। 24 अप्रैल, 1993 से यह संशोधन पूरे देश में लागू हुआ। इस संशोधन द्वारा पंचायतों को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अनेक महत्वपूर्ण व्यवस्थाएँ की गईं, इसमें मुख्यतः पंचायतों की वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ करना तथा पंचायतों के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं के लिए एक–तिहाई आरक्षण सम्मिलित है।[7]

राष्ट्रीय क्षितिज पर महात्मा गांधी के आगमन से पहले जितने भी सुधारवादी आंदोलन चले, उनका बल महिलाओं को उचित स्थान व सम्मान दिलाने पर था, लेकिन महिलाओं को स्थानीय, राज्य व केन्द्र स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी मिले, इसके लिए कोई विशेष प्रयास नहीं हुए। महात्मा गांधी ने पहली बार स्वतंत्रता आंदोलन को महिलाओं की मुक्ति से जोड़ा। 1925 में उन्होंने कहा था "जब तक भारत की महिलाएं सार्वजनिक जीवन में भाग नहीं लेंगी, तब तक इस देश को मुक्ति नहीं मिल सकती। मेरे लिए ऐसे स्वराज का कोई अर्थ नहीं है, जिसको प्राप्त करने में महिलाओं ने अपना भरपूर योगदान न किया हो।"[8] गांधीजी की पहल पर पहली बार महिलाएं व्यापक स्तर पर सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हुईं। उन्होंने अपने अस्तित्व की सार्थकता प्रमाणित की। यह भी सिद्ध किया कि भारत के पिछड़ेपन का एक कारण महिलाओं की उपेक्षा भी रहा है।

पंचायतों व उनमें महिलाओं की भागीदारी के बारे में संविधान सभा का उल्लेख करना आवश्यक है।[9] पहले तो पंचायतों को संविधान का अंग ही नहीं बनाया जा रहा था क्योंकि डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने गांवों को स्थानीय कूप, अज्ञान, संकीर्णता व साम्प्रदायिकता की गुफा बताकर पंचायतों का विरोध किया था। लेकिन गांधीजी के प्रभाव व अन्य दबावों के कारण अंततः पंचायतें संविधान का अंग बनीं। फिर भी पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हो, इसके बारे में कोई चर्चा नहीं हुई। संविधान सभा में पंचायतों की बात तो दूर, विधानमंडल व संसद में भी महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने की बात चली तो उसे भी समता, लिंग व भेदभाव के विपरीत बताकर रद्द कर दिया।[10]

भारत में महिलाएं सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न दौर से गुजरी हैं। जाति–व्यवस्था व लिंग–भेद ने उन्हें समाज के साथ सार्थक संवाद स्थापित करने व अपने आपको अभिव्यक्त करने के समुचित अवसर प्रदान नहीं किए। पुरुषों से पृथक् स्त्रियों की अपनी कोई पहचान नहीं रही। अतीत में भारत में पंचायतें थीं, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं लेकिन इनमें महिलाओं की भागीदारी भी थी–इसके प्रमाण नहीं मिलते। तत्कालीन पंचायतों के सदस्यों के लिए जो अर्हताएं निर्धारित की गई थीं, महिलाएं उनकी परिधि में नहीं आती थी।[11]

तत्कालीन समय में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उपर्युक्त योग्यताओं के आधार पर महिलाएं चुनाव के योग्य हो ही नहीं सकती थीं। न उनके पास भूमि थी, न उनको शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था, आर्थिक गतिविधियों में संलग्न होना तो बहुत दूर की बात थी। लेकिन जॉन

मथाई ने अपनी पुस्तक 'विलेज गवर्नमेंट इन ब्रिटिश इंडिया' में बताया है कि विभिन्न ग्रामीण समितियों के गठन में महिलाओं को सदस्य बनने को मनाही नहीं थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में भी इस ओर ध्यानाकर्षित करते हुए लिखा कि ग्रामीण समितियां एक वर्ष के लिए गठित होती थीं और महिलाएं भी ऐसी समितियों की सदस्य हो सकती थीं। इन दो संदर्भों से यह तो ज्ञात होता है कि महिलाएं भी ग्रामीण समितियों की सदस्य बन सकती थीं, लेकिन ऐसा प्रावधान यदि था भी तो उसका अधिक प्रचलन नहीं था। महिलाओं की जीवन–शैली एवं सामाजिक परिस्थितियाँ इतनी जटिल थीं कि वे किसी समिति की सदस्य नहीं बन सकती थीं। इन समितियों को अनेक सार्वजनिक सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता था, इसलिए महिलाएं इनसे सम्बद्ध नहीं हो पाती थीं। मुग़लों ने अपने शासनकाल में स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था से छेड़छाड़ नहीं की। उनका ऐसा कोई मन्तव्य नहीं था कि वे महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करें। मुग़लकाल में महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय हो गई तथा उनकी भूमिका और अधिक संकीर्ण हो गई। सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने की अपेक्षा उन्हें घूंघट में बंद कर घर की चारदीवारी तक ही सीमित कर दिया गया। ब्रिटिश काल में पंचायतों के विकास की दिशा में अनेक कदम उठाए गए, जैसे 14 दिसम्बर, 1870 को सत्ता के विकेंद्रीकरण और स्वायत्तशासन के गठन का प्रस्ताव 18 मई, 1882 को लार्ड रिपन का स्वायत्त शासन की इकाई का प्रस्ताव, 1907 में चार्ल्स हॉबहाउस की अध्यक्षता में शाही विकेंद्रीकरण आयोग का गठन तथा ऐसे ही अन्य कदम। किन्तु इन प्रयासों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने की दिशा में कोई प्रावधान नहीं किया गया।[12]

किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति का आंकलन रोजगार, शिक्षा व स्वास्थ्य में उनकी स्थिति में होता है असमान आर्थिक स्थिति को औचित्य प्रदान करने वाले ऐसे सामाजिक ढाँचे भी होते हैं जो गैरबराबरी को कर्त्तव्य, मर्यादा जातिवाद पर टिके गौरव, परम्परा आदि की आड़ में छिपा लेने का काम करते हैं।

रोजगार के क्षेत्र में महिलाएँ न केवल पिछड़ी हुई हैं बल्कि वे अधिकतर ऐसे काम करती हैं जो अस्थाई है और जिनके साथ पूर्णकालिक कार्यकर्ता को मिलने वाले लाभ वाले जुड़े हुए नहीं है। 2011 के आंकड़ों के अनुसार राज्य में पूर्णकालिक रोजगार प्राप्त पुरुषों की संख्या 42 लाख 56 हजार 846 है जबकि स्त्रियों की संख्या केवल 4 लाख 48 हजार 880 है किन्तु सीमान्त कार्यकर्ता (जिसे वर्ष में 183 दिन से कम काम मिले) के मामले में स्थिति उलट जाती है। यहाँ 22 हजार 325 पुरुषों के मुकाबले 3 लाख 62 हजार 496 महिला कार्यकर्ता हैं। अनुसूचित जाति की महिलाएँ भी बड़ी संख्या में सीमान्त कार्यकर्ता है इनमें 5 हजार 311 पुरुषों के मुकाबले 70 हजार 454 महिलाएँ हैं जबकि मुख्य काम करने वाले (पूर्णकालिक) पुरुषों की संख्या महिलाओं की संख्या के मुकाबले बहुत अधिक है।

विधानसभा चुनावों में भी महिला प्रतिनिधियों की स्थिति काफी सुदृढ़ नहीं है। महिलाओं के वोटों को भी स्वतन्त्र वोट के रूप में नहीं देखा जाता। यह समझा जाता है कि महिलाएँ अपने पति और कुटुम्ब के अनुसार ही वोट डालेंगी। वोट डालने का फैसला भी अक्सर घर के मुखिया और जाति गोत के मुखिया करते हैं महिलाओं द्वारा मतदान भी अपेक्षा कम किया जाता है।

पंचायती राज में महिलाओं की विस्तृत भागीदारी महज प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में राजनैतिक सहभागिता के लिए ही आवश्यक नहीं समझी जाती वरन् महिलाओं के लिए विकासात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु भी जरूरी माना जाता है। 76वाँ संविधान संशोधन जिसके द्वारा पंचायती राज संस्थाओं में हर स्तर पर महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित हैं इससे जन सामान्य के स्तर पर नेतृत्व देने वाली महिलाओं की यह विशाल संख्या समाज में परिवर्तन लाने में शक्तिशाली भूमिका निभायेगी।

पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी से महिलाओं की स्थिति में सुधार हो रहा है लेकिन समाज में उन्हें वांछित स्थान दिलाने हेतु अभी भी इस ओर बहुत कुछ किया जाना बाकी है। वास्तविकता यह है कि महिलाओं की स्थिति बदलने के लिए तमाम सरकारी और कानूनी प्रयास तब अधिक कारगर हो सकते हैं जबकि समाज के सम्पूर्ण सोच, रवैये और पूर्वाग्रहपूर्ण धारणाओं में भी उनके प्रति बदलाव आए।

पंचायती राज में महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण

संवैधानिक मान्यता प्राप्त होने के बाद अब जो पंचायतें गठित होगी, उनमें महिलाओं के लिए एक तिहाई या कम–से–कम तीस प्रतिशत स्थान आरक्षित रहेंगे। अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए भी इनकी आबादी के अनुपात में स्थान आरक्षण की नए कानून में व्यवस्था है, किन्तु उसमें भी यह व्यवस्था है कि इन जातियों के प्रतिनिधियों में भी कम–से–कम तीस प्रतिशत महिलाएँ हों। दूसरे शब्दों में यह पंचायती राज प्रणाली महिलाओं को राजनीतिक शक्ति देने का स्रोत और साधन भी है। वर्तमान में देश में ग्राम पंचायतों की संख्या लगभग सवा दो लाख होगी। एक पंचायत में जनसंख्या के अनुपात से पाँच से चौदह तक पंच चुने जाते हैं। औसतन अगर हर पंचायत में दस पंचों का भी निर्वाचन हो तो कुल पंचों की संख्या लगभग साढ़े बाईस लाख बैठती है, इसमें से अगर एक तिहाई महिलाएँ हो तो उनकी संख्या करीब साढ़े सात लाख होगी, अगर यह माना जाए कि एक स्थान के लिए दो या तीन महिला उम्मीदवार होंगी तो चुनाव लड़ने वाली महिलाओं की संख्या अठारह बीस लाख के बीच होती है। इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं का घर की चारदिवारी से बाहर आना और जन समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना समाज में निश्चित ही नई चेतना जगाएगा। केवल ग्राम पंचायत में ही नहीं, ब्लाक और जिला स्तर की पंचायतों में भी महिलाओं को इतनी ही मात्रा में आरक्षण दिया गया है।

निष्कर्ष

किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति का आंकलन रोजगार, शिक्षा व स्वास्थ्य में उनकी स्थिति से होता है। महिलाओं को हमारे समाज में दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक शैक्षणिक रोजगार आदि हर क्षेत्र में बुरी तरह से पिछड़ी हुई है।

पंचायती राज में भी महिलाओं की भागीदारी उन्हें तैंतीस प्रतिशत आरक्षण के बाद आरम्भ हुई। इसमें भी महिला प्रतिनिधियों के पति अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। महिला प्रतिनिधियों के ऐसे परिवार भी हैं जहाँ नारियाँ पढ़ी लिखी हैं, समर्थ हैं, अर्जनशील हैं। फिर भी उसके लिए मार्ग या उसके जीवन के लिए मानदण्ड पुरुष निर्धारित करता है। राजस्थान में पंचायती राज में महिला जनप्रतिनिधि प्रायः अनपढ़ हैं जो उनके प्रतिनिधित्व में मुख्य बाधा है। परन्तु भी पंचायती राज में महिलाओं का मानना है कि उनकी इस नई भूमिका ने परिवार एवं समाज में उनकी साख बनाई है। महिलाएँ अब तक भ्रष्ट राजनीति का हिस्सा नहीं बनी हैं वे भ्रष्टाचार, जोड़–तोड़ और चौधराहट आदि बुराईयों से काफी हद तक बची हुई हैं। अतः वे ईमानदारी से काम करेगी इसकी बहुत उम्मीद है। महिलाओं के लिए पंचायत पंचायती राज संस्थाओं में किया गया आरक्षण उनके लिए आगे भी बड़ी संस्थाओं, विधानमण्डलों और संसद में भी उनकी सक्रिय भागीदारी का मार्गप्रशस्त करेगा। महिलाओं की वर्तमान में पंचायतों में भागीदारी बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि महिलाओं में जागरूकता पैदा करने के अलावा उन्हें पंचायत व्यवस्था के विषय में भी शिक्षा देना जरूरी है।

पंचायती राज महिला सरपंचों के विषय में हम रोजमर्रा के अनुभवों, महिला संगठनों के अनुभवों और अखबारों में छपने वाली खबरों के आधार पर जानते हैं कि ये अपना प्रतिनिधित्व उचित प्रकार से नहीं निभा पा रही हैं। इसका कारण यह है कि महिला सरपंचों की भागीदारी नवीन है तथा समाज में पुरुष वर्ग यह नहीं चाहता कि महिलाएँ उन पर अपना वर्चस्व स्थापित कर सकें अथवा उनकी बराबरी का दर्जा हासिल कर सकें।

ऐसी स्थितियों से निपटने का यह उपाय है कि महिला–सरपंच व पंचों को सरकार द्वारा प्रशिक्षित किया जाए। गांव में सरपंच व पंच पद के लिए चुनाव लड़ने के लिए कुछ अर्हताएँ निश्चित की जाए जिनमें प्राथमिक स्तर तक शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाए। इनके अतिरिक्त सरकार को भी यह चाहिए कि वे महिला जनप्रतिनिधियों को जागृत करने के लिए कुछ आवश्यक उपाय करे। उदाहरणतः यह कानून बनाया जाए कि पंचायतों की मीटिंगों में केवल महिला सरपंच आए उनके पति या पुत्र नहीं, व प्रशासनिक स्तर पर भी महिला प्रतिनिधियों की समस्याओं का तुरन्त समाधान किया जाए। इन प्रयासों से पंचायती राज में महिला सरपंच व अन्य महिला पंचों में विश्वास व सुरक्षा की भावना पैदा होगी जिससे भविष्य के विषय में यह उम्मीद की जा सकती है कि स्थानीय स्वशासन से लेकर केन्द्रीय शासन तक महिला जन प्रतिनिधियों का वर्चस्व स्थापित हो जाएगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा वीरेन्द्र, शर्मा ऋचा : 'पंचायती राज' यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 95
2. सुराणा राज कुमारी : 'भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और नव पंचायती राज', राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर संस्करण–2000, पृष्ठ संख्या 50
3. उपरोक्त, पृ. 51.
4. शर्मा कविता : 'स्त्री सशक्तीकरण के आयाम', रजत प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2012, पृष्ठ संख्या 124
5. विद्या के. सी.: 'पॉलिटिकल एम्पावरमेन्ट एट दी ग्रास रूट' कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण–1997, पृष्ठ संख्या 60
6. शर्मा वीरेन्द्र, शर्मा ऋचा : पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 103
7. शर्मा अशोक, "भारत में स्थानीय स्वशासन" (द्वितीय संस्करण), आर. वी.एस.ए पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाईवे, जयपुर (राजस्थान)
8. श्रीवास्तव, अरूण कुमार, "भारत में पंचायतीराज", आर.वी.एस.ए पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाईवे, जयपुर (राजस्थान)
9. कोठारी, रजनी, "भारत में राजनीति" ओरियन्ट लोंगमैन लिमिटेड।
10. कुरूक्षेत्र पत्रिका, फरवरी, 2011.
11. पंचायतीराज और हमारा साझा विकास, पत्रिका
12. सिन्हा, वी.एम., "भारत में नगरीय सरकारें", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।